



दलित आत्मकथाओं में सौंदर्यशास्त्र और कथात्मक तकनीकों का अध्ययन करना

¹Sharad Tripathi and ²Dr. Arvind Kumar

¹Research Scholar, Mahakaushal University, Jabalpur, Madhya Pradesh, India

²Professor, Mahakaushal University, Jabalpur, Madhya Pradesh, India

DOI: <https://doi.org/10.5281/zenodo.20160152>

Corresponding Author: Sharad Tripathi

सारांश

दलित पहचान की खोज दलित साहित्य का एक मुख्य मुद्दा रहा है जो सदियों से गैर-दलित साहित्य में खो गया था। दलितों की चेतना की स्थिति में अचेतन का परिवर्तन उनके घनत्व का निर्माण करने वाले प्रमुख कारकों में से एक है जिसने उन्हें अपने पिछले सामाजिक-सांस्कृतिक इतिहासलेखन में वापस जाने के लिए प्रेरित किया। दलित साहित्य के मुख्य विचारों को परिभाषित करने के बाद लिंबाले दलित साहित्य पर लगे आरोपों के बारे में बात करते हैं। दलित साहित्य पर लगा सबसे बड़ा आरोप यह है कि यह दुष्प्रचारक है।

मूल शब्द: दलित, सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्य, चेतना, अछूत।

प्रस्तावना

"दलित" शब्द एक पुराना मराठी शब्द है जो मोल्सवर्थ के मराठी-अंग्रेजी शब्दकोश 1975 (1813 संस्करण का पुनर्मुद्रण) में पाया जाता है जिसका अर्थ है "पिसा हुआ, टूटा हुआ या आम तौर पर टुकड़ों में बंटा हुआ।" यह एक संस्कृत शब्द से निकला है जिसका अर्थ है "कुचल दिया गया" और भारतीयों के लिए आसानी से समझ में आने वाला शब्द है। "दलित" शब्द का इस्तेमाल अब "अछूत" शब्द की जगह व्यापक रूप से किया जाता है। दलित साहित्य समाज के वंचित, वंचित, वंचित आदि लोगों से संबंधित अपमान, घृणा, शोषण और दमन को उजागर करता है जिन्हें सदियों से उनके अधिकारों और कर्तव्यों से वंचित रखा गया है, हालांकि वे राष्ट्र के विकास के लिए विभिन्न क्षेत्रों और गतिविधियों में कड़ी मेहनत कर रहे हैं। वास्तव में निम्न वर्गों को उचित व्यवहार नहीं मिला है और उन्हें अब तक चुपचाप पीड़ित होने के लिए छोड़ दिया गया है।

आधुनिक भारत की जटिल राजनीतिक अर्थव्यवस्था में, "दलित" बनना वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से सबाल्टर्न इकाई राजनीतिक दीक्षा और मानव के मूल्य शासन के सर्किट में प्रवेश करती है। आम तौर पर मुख्यधारा के साहित्य में पारंपरिक साहित्यिक इतिहास और माप मानकों की विरासत और प्रधानता होती है। हालांकि, जब हम दलित साहित्य की बात करते हैं, तो मौजूदा विहित प्रतिमान को अपना स्वयं का दार्शनिक आधार और टेम्पलेट बनाने की आवश्यकता होती है। मार्क्सवादी साहित्य के

विपरीत, सबाल्टर्न साहित्य वर्ग संघर्ष की बात नहीं करता है; बल्कि यह जातियों के बीच संघर्ष से जुड़ा है। दलित सुधार का इतिहास 1870 के बाद शुरू होता है, जब पूना में महात्मा ज्योतिबा गोविंद फुले ने अपने सत्यशोधक सरनाज की स्थापना की। उन्होंने दलितों को उच्च जातियों की दासता से छुटकारा पाने के लिए प्रेरित किया। 25 दिसंबर 1927 को आयोजित महाड सम्मेलन में, अंबेडकर ने मनुस्मृति को जलाया और उनकी उपस्थिति में दलितों ने शपथ ली।

यह उल्लेखनीय है कि दलित सामाजिक जिम्मेदारी के कारण लिखते हैं। यह अक्सर वंचित दलितों को सिखाने, उन्हें समझाने या उन्हें जगाने के लिए होता है, जो नहीं जानते कि अपने जीवन को लेखन में कैसे व्यक्त किया जाए। यहाँ एक महत्वपूर्ण बात दलितों द्वारा अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए इस्तेमाल की जाने वाली भाषा है। हम देखते हैं कि मुख्यधारा के लेखन की तुलना में उनकी शैली बहुत अलग है। व्याकरण या तथाकथित शैलीविज्ञान से ज्यादा, वे भावनाओं और जो वे कहते हैं उसकी सच्चाई पर निर्भर करते हैं। मानक भाषा को अस्वीकार किया जाता है क्योंकि मानक भाषा एक वर्ग के साथ आती है। दूसरे शब्दों में, दलितों को हर मायने में अलगाव का सामना करना पड़ता है। अलग-अलग भाषा और शैली का उपयोग करने के साथ-साथ महाकाव्यों को भी अस्वीकार करना ज़रूरी था क्योंकि महाकाव्यों में दलितों का चित्रण सटीक नहीं था।

मुख्यधारा के साहित्य जगत में अक्सर यह तर्क दिया जाता है कि

दलित साहित्य में शिष्टता नहीं है और यह बहुत कच्चा है। दलित साहित्य पर एक और आरोप यह है कि यह एकवचन है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि अलग-अलग दलित आख्यानों में अनुभव एक जैसे लगते हैं, क्योंकि अलग-अलग दलित समुदायों द्वारा झेले गए अत्याचारों में बहुत अंतर नहीं है। गद्य की तुलना में कविता में एकवचन अक्सर ज्यादा मौजूद होता है। चूंकि दलितों के अनुभव अक्सर सामूहिक होते हैं और एक ही अनुभव समुदाय को दर्शाता और उसका प्रतिनिधित्व करता है, इसलिए आख्यानों में व्यक्तियों की मौजूदगी वास्तव में मायने नहीं रखती। जो लोग कहते हैं कि दलित साहित्य नाराज़गी भरा है, उन्होंने कभी दलित जीवन को करीब से नहीं देखा है।

साहित्य की समीक्षा

हंट, सारा. (2014) ^[1] हिंदी दलित साहित्य और प्रतिनिधित्व की राजनीति। यह अध्ययन बताता है कि उत्तर भारत में दलितों ने जाति उत्पीड़न के खिलाफ विरोध के साधन के रूप में साहित्य का उपयोग कैसे किया है। नए नृवंशविज्ञान अनुसंधान और साक्षात्कारों को शामिल करते हुए, यह हिंदी में आधुनिक दलित लेखन की प्रगति और एक विशिष्ट दलित पहचान के निर्माण, उत्थान और सुदृढ़ीकरण में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका का पता लगाता है।

वेस्लर, हेंज. (2020) ^[2] 19वीं शताब्दी में अपनी शुरुआत से ही सामाजिक मुद्दे आधुनिक भारतीय साहित्य और विशेष रूप से हिंदी साहित्य में एक महत्वपूर्ण चिंता का विषय रहे हैं। हाल के दशकों में, दलित और आदिवासी साहित्य-निम्न जाति और आदिवासी पृष्ठभूमि से आने वाले लेखकों द्वारा लिखा गया - महत्वपूर्ण हिंदी विधाओं के रूप में उभरा है। दलित और आदिवासी भारत में आर्थिक रूप से सबसे हाशिए पर रहने वाले समूह हैं।

परवीन, शाइस्ता और आलम, एमडी (2023) ^[3] हिंदी दलित साहित्य का निर्माण एक सदी से भी अधिक समय से हो रहा है, लेकिन इसे अभी भी मुख्यधारा के बड़े दर्शकों द्वारा स्वीकार नहीं किया गया है। इस लेख में, यह जांच की गई है कि दलित महिलाओं की पीढ़ियाँ कैसे रहीं।

ब्रोवार्स्की, मोनिका. (2021) ^[4] पश्चिम और दक्षिण एशिया की विभिन्न साहित्यिक संस्कृतियों में ऐतिहासिक शोध के लिए स्रोत सामग्री के रूप में जीवन लेखन का बार-बार उपयोग किया गया है। भारतीय इतिहासलेखन की मुख्यधारा की कहानियों से दलित इतिहास की अनुपस्थिति और जानबूझकर, सामाजिक रूप से वातानुकूलित विलोपन को देखते हुए, कुछ विद्वानों ने दलित जीवन लेखन को इतिहास लेखन के अभ्यास के रूप में देखने की धारणा पेश की है।

मिश्रा, शिप्रा और जोशी, प्राजक्ता और गार्डनर, क्रिस्टाबेल। (2024) ^[5] यह अध्ययन वर्तमान अंग्रेजी साहित्य के क्षेत्र में दलित साहित्य और उत्तर आधुनिकतावाद के अभिसरण की जांच करना चाहता है। दलित साहित्य, भारत के उत्पीड़ित लोगों की हाशिए की आवाज़ों से उत्पन्न होता है, जो सामाजिक पदानुक्रम, पहचान की राजनीति और प्रतिरोध में विशिष्ट अंतर्दृष्टि प्रदान करता है। उत्तर आधुनिकतावाद, जो व्यापक कथाओं के प्रति अपने संदेह और बहुलता, विखंडन और व्यक्तिपरकता पर ध्यान केंद्रित करने से परिभाषित होता है, दलित साहित्य में मौजूद विभिन्न कथाओं और शैलियों का विश्लेषण करने के लिए एक सैद्धांतिक रूपरेखा प्रदान करता है।

दलित साहित्य आंदोलन

दलित साहित्य साहित्य के आधुनिक युग में एक नई परिघटना है, जहाँ दलित, अछूत लेखकों के पीड़ादायक अनुभवों को उजागर किया जाता है, ताकि दलित और गैर-दलित पाठकों के सामने समकालीन सामाजिक, मानसिक स्थिति को प्रस्तुत किया जा सके। मुल्क राज आनंद ने सबसे पहले दलित साहित्य को अंग्रेजी में 'अनटचेबल', 'कुली' जैसे अपने उपन्यासों के माध्यम से प्रचारित किया और साथ ही साथ अंग्रेजी और विभिन्न भाषाओं में उनका अनुवाद भी किया। दलित साहित्य की शैली में साहित्यिक विधाओं की एक विस्तृत श्रृंखला शामिल है। यह दलित साहित्य महाराष्ट्र के दलित कवियों, लेखकों द्वारा मराठी में लोकप्रिय बनाया गया है। इसका एकमात्र उद्देश्य समाज में दलितों की सामाजिक स्थिति के बारे में सभी जागरूक पाठकों तक जागरूकता पैदा करना है।

महान विचारक डॉ. भीमराव अंबेडकर की मृत्यु के बाद 1958 में भारत में दमित वर्ग आंदोलन की शुरुआत हुई और इससे पहले महात्मा ज्योतिबा फुले ने इसकी प्रेरणा ली थी। इसे समकालीन अमेरिका के अश्वेत आंदोलन से प्रेरणा मिली। जैसा कि अर्थ से स्पष्ट है दलित साहित्य दलितों या उत्पीड़ितों के बारे में और उनके लिए लिखा जाता है। यह साहित्य अछूतों के अनुभवों की पीड़ा को प्रतिध्वनित करता है। यह उच्च जाति के लोगों द्वारा किए गए जातिगत अपमान, अन्याय, अत्याचार और भेदभाव को चित्रित करता है। यह उस राजनीतिक चेतना को व्यक्त करता है जो समुदाय के लिए आत्म-सम्मान और गरिमा के संघर्ष पर केंद्रित है। इस साहित्य में प्रकृति और पर्यावरण के शोषण, अमेरिका में अफ्रीकी अमेरिकियों के नस्लीय भेदभाव, महिलाओं की अधीनता, समलैंगिकों के अधिकार, वृद्ध लोगों की उपेक्षा के बारे में लेखन शामिल हो सकते हैं। "दलित" शब्द की एक बड़ी परिधि है और यह हर प्रकार के वर्चस्व के बारे में बोलता है जिसका कोई भी समूह सामना करता है। इस साहित्य में अतीत के आघातों को ठीक करने की शक्ति है।

ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य ने ऐतिहासिक रूप से वंचित पुरुषों और महिलाओं को कुछ सुधार योजनाएं दीं। उन्होंने "भारत सरकार अधिनियम 1935" पारित किया और अछूतों को दलित वर्ग या अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के रूप में पहचाना। इस अधिनियम ने दलितों के विकास के लिए कुछ कल्याणकारी योजनाएं भी प्रदान कीं। भले ही दलितों को अपवित्र और अकुशल माना जाता था, लेकिन उन्होंने भाषणों और लेखों में अपनी गरिमा और पहचान को व्यक्त करना शुरू कर दिया। इस आंदोलन ने शोषित सामाजिक जीवन के बारे में शोध लेख, कविताएँ, नाटक, लघु कथाएँ, उपन्यास और अन्य प्रकार के जनसंचार माध्यमों का निर्माण किया। विदेशी लेखक, गैर-दलित और दलित दक्षिण एशिया में जाति व्यवस्था के प्रभाव से अवगत थे।

पहले दलित लेखकों में से एक मदारा चेन्नईयाह थे, जो 11वीं सदी के मोची-संत थे, जो पश्चिमी चालुक्यों के शासनकाल के दौरान रहते थे और जिन्हें कुछ विद्वान "वचन कविता के जनक" के रूप में भी मानते हैं। एक अन्य कवि जिसका उल्लेख मिलता है, वह है दोहरा कक्कैया, जो जन्म से दलित थे, जिनकी छह स्वीकारोक्ति कविताएँ बची हुई हैं, जो उस कठिन समय पर प्रकाश डालती हैं। मराठी संत चोखामेला और उनकी पत्नी सोयराबाई ने भी 13वीं सदी में अपनी कविताओं (अभंग) के माध्यम से उत्पीड़ितों की स्थिति को समझाया। 1958 में, "दलित साहित्य" शब्द का पहली बार इस्तेमाल किया गया था, जब महाराष्ट्र दलित साहित्य संघ (महाराष्ट्र दलित साहित्य सोसायटी) का पहला सम्मेलन मुंबई में आयोजित किया गया था।

■ दलित लघु कथाएँ

लघु कथाएँ और उपन्यास साहित्य की महत्वपूर्ण विधाएँ हैं, जिनका दलित लेखकों ने दलित संवेदनाओं को सटीक रूप से व्यक्त करने के लिए उपयोग किया है। दलित लेखकों द्वारा लिखी गई दलित लघु कथाओं के सबसे अच्छे उदाहरण हैं 'फकीरा' - अन्ना भाऊसाठे, 'दावंडी' - शंकर रावखारत, 'जेवहमीजातचोरलीहोती (जब मैंने एक जाति को लूटा) - 1963 मरनस्वस्त होत आहे-1969 (मौत सस्ती हो रही है) - बाबूराव बागुल, लाल पत्थर-एनजी शेंडे।

■ दलित ऑटो कथाएँ

दलित लेखक ज्यादातर अपनी आत्मकथाओं में सामाजिक अन्याय से जुड़े अपने अनुभवों को व्यक्त करते हैं। इसे दलित आत्मकथा कहा जाता है। साहित्य का यह रूप दलित लेखकों के लिए सबसे उपयुक्त है।

■ सौंदर्यशास्त्र

दलित पैथर्स का सौंदर्यशास्त्र दलितों के जीवित अनुभवों के कच्चे और भावपूर्ण प्रतिनिधित्व में निहित है। यह दलितों द्वारा ऐतिहासिक रूप से झेली गई हिंसा, भेदभाव और अपमान का एक स्पष्ट, अडिग चित्रण है। यह सौंदर्यशास्त्र मुख्यधारा के साहित्य में प्रचलित स्वच्छंद आख्यानों से अलग है, और इसके बजाय दलित जीवन का एक कठोर, यथार्थवादी चित्रण प्रस्तुत करता है। उनके साहित्य और कला में स्थानीय बोलियों, लोककथाओं और सांस्कृतिक प्रतीकों के उपयोग ने दलित सौंदर्यशास्त्र को और समृद्ध किया, जिससे यह दलित समुदाय के लिए अभिव्यक्ति और पहचान का एक शक्तिशाली माध्यम बन गया।

■ राजनीति

राजनीतिक रूप से, दलित पैथर्स क्रांतिकारी थे। उन्होंने जाति उत्पीड़न, आर्थिक शोषण और सामाजिक भेदभाव के खिलाफ लड़ने के लिए दलितों को संगठित करने की कोशिश की। ब्लैक पैथर आंदोलन के साथ समानताएं दर्शाते हुए, उन्होंने जाति व्यवस्था और राज्य तंत्र दोनों को चुनौती देते हुए कट्टरपंथी सक्रियता और प्रतिरोध का रुख अपनाया, जिसने जाति आधारित असमानताओं को कायम रखा। पैथर्स ने दलितों के सम्मान, समानता और सामाजिक न्याय के अधिकारों की वकालत की, जिसने भारत में राजनीतिक विमर्श को काफी प्रभावित किया। उनका घोषणापत्र, जिसमें दलितों द्वारा सामना किए गए ऐतिहासिक अन्याय और निवारण की उनकी मांगों को रेखांकित किया गया था, एक मौलिक दस्तावेज था जिसने दलित समुदाय की राजनीतिक आकांक्षाओं और मांगों को समाहित किया।

■ साहित्य

दलित पैथर्स के साहित्य ने पारंपरिक दलित आख्यानों से एक महत्वपूर्ण बदलाव किया। यह आंदोलन के राजनीतिक उत्साह को दर्शाते हुए क्रोध, विरोध और न्याय की मांग की भावना से ओतप्रोत था। दलित पैथर के सदस्यों की कविता, निबंध और आत्मकथाओं सहित साहित्यिक कृतियाँ न केवल कलात्मक अभिव्यक्ति थीं, बल्कि राजनीतिक सक्रियता के साधन भी थीं। इन कृतियों ने भारतीय समाज और साहित्य के जातिवादी पूर्वाग्रहों को चुनौती दी, दलित पहचान और सम्मान को मुखर किया। नामदेव ढसाल (15 फरवरी 1949 - 15 जनवरी 2014), राजा ढाले (30 सितंबर 1940

- 16 जुलाई 2019) और जेवी पवार (जन्म; 14 जुलाई 1943) जैसी उल्लेखनीय हस्तियों ने दलितों की दुर्दशा को उजागर करने और आमूलचूल सामाजिक परिवर्तन का आह्वान करने के लिए अपने लेखन का उपयोग करते हुए साहित्य के इस संग्रह में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

■ विषय-वस्तु और आख्यानों का विकास

दलित पैथर आंदोलन के बाद, दलित साहित्य ने जाति उत्पीड़न और प्रतिरोध के तात्कालिक अनुभवों से परे विषयों की एक विस्तृत श्रृंखला का पता लगाना शुरू कर दिया। जबकि जातिगत भेदभाव के खिलाफ संघर्ष केंद्रीय रहा, लेखकों ने लिंग, वर्ग और धर्म के मुद्दों पर भी गहनता से विचार किया, जो दलित अनुभवों की अंतर्संबंधता को दर्शाता है। इस अवधि में दलित नारीवाद का उदय हुआ, जिसमें बामा (जन्म 14 मार्च 1958) और उर्मिला पवार (जन्म 1945) जैसी लेखिकाओं ने जाति व्यवस्था और पितृसत्तात्मक संरचनाओं के भीतर दलित महिलाओं के दोहरे हाशिए पर होने को उजागर किया।

■ सौंदर्य संबंधी नवाचार

दलित पैथर के बाद के युग में दलित साहित्य में महत्वपूर्ण सौंदर्य संबंधी नवाचार देखे गए। एक अलग दलित सौंदर्यशास्त्र विकसित करने का सचेत प्रयास किया गया जो दलित जीवन की बनावट, लय और बारीकियों को दर्शाता था। इस सौंदर्यशास्त्र की विशेषता इसकी प्रत्यक्षता, कच्चापन और भावनात्मक तीव्रता थी, जिसमें अक्सर स्थानीय बोलियों, लोक परंपराओं (उदाहरण के लिए जी कल्याण राव द्वारा अछूत वसंत) और सांस्कृतिक रूपांकनों का उपयोग दलित अनुभवों और विश्वदृष्टि को व्यक्त करने के लिए किया जाता था।

■ सांस्कृतिक और राजनीतिक जुड़ाव

दलित पैथर के बाद के दौर में दलित साहित्य और सौंदर्यशास्त्र ने उस समय के सांस्कृतिक और राजनीतिक विमर्शों के साथ सीधे तौर पर जुड़ाव दिखाया। दलित लेखकों और कलाकारों ने इतिहास, धर्म और संस्कृति के प्रमुख आख्यानों को चुनौती दी, उन प्रतीकों और कहानियों को पुनः प्राप्त किया और उनकी पुनर्व्याख्या की जिनका इस्तेमाल उन्हें हाशिए पर डालने के लिए किया गया था, उदाहरण के लिए जी कल्याण राव द्वारा अछूत वसंत। इस अवधि में अकादमिक जगत में दलित अध्ययनों का उदय भी हुआ, जिसमें विद्वानों और कार्यकर्ताओं ने उत्तर-औपनिवेशिक सिद्धांत, नारीवादी सिद्धांत और आलोचनात्मक जाति अध्ययनों सहित विभिन्न सैद्धांतिक लेंसों के माध्यम से दलित साहित्य और संस्कृति का विश्लेषण किया।

■ वैश्विक परिप्रेक्ष्य

अंत में, दलित पैथर के बाद के युग में दलित साहित्य और सौंदर्यशास्त्र का वैश्वीकरण हुआ है। दलित लेखकों और कलाकारों ने मानवाधिकारों, सामाजिक न्याय और अल्पसंख्यकों के अनुभवों पर वैश्विक संवादों में भाग लेकर अंतरराष्ट्रीय पहचान हासिल की है। इस वैश्विक जुड़ाव ने दलित साहित्य को नए दृष्टिकोण और एकजुटता के साथ समृद्ध किया है, जिसने दलित संघर्ष को दुनिया भर में नस्लवाद, भेदभाव और असमानता के खिलाफ व्यापक आंदोलनों से जोड़ा है।

दलित आत्मकथाओं में सौंदर्यशास्त्र और कथात्मक तकनीक

गन्ना टेढ़ा है, पर उसका रस टेढ़ा नहीं है
 बाहरी दिखावे से क्यों मूर्ख बनें?
 धनुष टेढ़ा है, पर तीर टेढ़ा नहीं है,
 बाहरी दिखावे से क्यों मूर्ख बनें?
 नदी घुमावदार है, लेकिन पानी टेढ़ा नहीं है।
 बाहरी दिखावे से क्यों मूर्ख बनें?
 चोखा कुरूप है, लेकिन उसकी भावनाएँ कुरूप नहीं हैं।
 बाहरी दिखावे से क्यों मूर्ख बनें?
 (चोखामेला द्वारा अभंगा 52, ज़ेलियट में क्यूटीडी, 2005, 8)

दलित साहित्य आलोचना के सैद्धांतिकीकरण की आवश्यकता दलित-लेखक आलोचकों द्वारा 1976 में नागपुर में आयोजित दलित साहित्य सम्मेलन से ही महसूस की जा रही है। सम्मेलन में साहित्य आलोचक आर.जी. जाधव ने सामाजिक चेतना और सौंदर्यबोध के विषय को सूत्रबद्ध करते हुए साहित्य के विकास की वास्तविक समझ प्रस्तुत की। किसी भी साहित्यिक कृति में सामाजिक विषय-वस्तु और सौंदर्यबोध का अभिन्न अंग है। साहित्यिक कृति के रूप में साहित्यिक कृति की स्वायत्तता को स्वीकार किया जाना चाहिए, लेकिन जब सामाजिक चेतना के विषय को उचित साहित्यिक रूप में प्रस्तुत किया जाता है, तो वह महत्वपूर्ण हो जाती है। दलित साहित्य में सामाजिक चेतना के विषय उल्लेखनीय रूप से काफी मात्रा में समाहित हैं। हालांकि साहित्यिक आलोचना में ऐसा लगता है कि विषय-वस्तु और रूप-वस्तु दोनों अलग-अलग हैं, लेकिन वास्तविक आलोचना में वे साथ-साथ चलते हैं। साहित्यिक कृति में सामाजिक और औपचारिक पहलुओं का सम्मिश्रण होता है और ऐसा सम्मिश्रण स्वाभाविक है, अन्यथा दोनों ही उद्देश्य विफल हो सकते हैं। जाधव ने दलित सौंदर्यशास्त्र के विचार को इस प्रकार सुझाया:

मेरा मानना है कि दलित सौंदर्यशास्त्र की दृष्टि से महत्वपूर्ण बात यह है कि सामाजिक चेतना में अतिशयता से मुक्त होकर सौंदर्यशास्त्रीय दूरी हासिल की जाए। इसका अर्थ है कि दलित लेखकों को जीवन के प्रति अपनी सम्पूर्ण संवेदनशीलता को कला के स्तर पर साकार करना होगा। (जहरीली रोटी 306)

वे आगे तर्क देते हैं कि दलित दुनिया जीवन के संघर्ष में गहराई से डूबी हुई है, और वास्तविक दलित दुनिया भयानक, भयावह और अपमानजनक घटनाओं से भरी हुई है। जैसा कि वे लिखते हैं:

दलित लेखक शारीरिक और मानसिक रूप से इस दुनिया से बंधे होने से बच नहीं सकते। दलित लेखक इस जीवन को व्यक्तिगत अनुभव और सहानुभूति के माध्यम से चित्रित करने का कठिन काम कर रहे हैं, इसे अपनी संवेदना में हर तरफ से आत्मसात कर रहे हैं। इस जीवन को जीना जितना कष्टदायक है, मानसिक स्तर पर इसे फिर से बनाना भी उतना ही कष्टदायक हो सकता है। (वही 310)

दया पवार और अन्य दलित लेखक मुख्यधारा के भारतीय लेखकों के सामने यह तर्क देते हैं कि उच्च जाति के लेखकों ने दलित जीवन को देखने की जहमत नहीं उठाई - यहाँ तक कि आँख मूँदकर भी नहीं। दया पवार अपनी कविता "ओह! महान कवि" में महान कवि वाल्मीकि से पूछते हैं, जो रामराज्य की प्रशंसा में गाते हैं, "ओह वाल्मीकि... फिर हम आपको महान कवि कैसे कह सकते हैं?" (आनंद 132 में)। पवार वाल्मीकि के काम की महाकाव्य गुणवत्ता के दावे का विरोध करते हैं क्योंकि उन्होंने दलितों के अन्याय और दमन के बारे में एक भी छंद नहीं लिखा

था। इसलिए, दलितों की पीड़ा और उत्पीड़ित सामाजिक वास्तविकता की गहरी अभिव्यक्ति दलित साहित्य का एक अंतर्निहित घटक है।

जनार्दन वाघमारे ने अपने निबंध "ब्लैक लिटरेचर एंड दलित लिटरेचर" में ऐतिहासिक और वैचारिक दृष्टिकोण से दोनों साहित्यों का तुलनात्मक अध्ययन किया है। उन्होंने बताया कि प्रथम विश्व युद्ध के बाद ही अमेरिकी अश्वेत साहित्य ने वास्तविक प्रगति की। 1920 और 1930 के बीच की अवधि में अश्वेतों की कलात्मक उपलब्धियों के विभिन्न पहलू सामने आए। यह वह समय था जब "नए अश्वेत" के रूप में युवा लेखक सबसे आगे आए। युवा अश्वेत लेखकों का प्रतिनिधित्व करने वाले कवि और उपन्यासकार लैंगस्टन ह्यूजेस ने अश्वेत साहित्य का घोषणापत्र प्रस्तुत किया:

हम युवा नीग्रो कलाकार, जो रचना करते हैं, अब बिना किसी डर या शर्म के अपने काले रंग के व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करने का इरादा रखते हैं। अगर गोर लोग खुश हैं, तो हमें खुशी है। अगर वे खुश नहीं हैं, तो कोई बात नहीं। अब हम सुंदर हैं। (वाघमारे 2009, 318 में उद्धृत)

इस प्रकार, अश्वेत लेखकों ने अपने जीवन को अपनी विशिष्ट भाषा में चित्रित करना शुरू कर दिया। उस समय से, उन्होंने अपनी काली त्वचा और दिमाग को सफ़ेद करने का विचार त्याग दिया।

1940 और 1950 के दशक में अमेरिका में कुछ उल्लेखनीय साहित्यिक कृतियाँ लिखी गईं, जैसे रिचर्ड राइट का उपन्यास, नेटिव सन (1940) जिसमें शिकागो में यहूदी बस्ती के जीवन को दर्शाया गया था और 1952 में राल्फ एलिसन का प्रसिद्ध उपन्यास, इनविजिबल मैन प्रकाशित हुआ था जिसमें अश्वेत जीवन की साढ़े तीन शताब्दियों को दर्शाया गया था। अश्वेत लेखकों को इस तरह का क्रांतिकारी रुख अपनाने में लगभग चालीस से पचास साल लग गए, जबकि दलित साहित्य मुख्य रूप से 1930 के दशक में डॉ. बीआर आंबेकर के नेतृत्व में उभरा और 1970 और 1980 के दशक में इसका बोलबाला रहा।

एमएन वानखड़े ने दलित लेखकों के सम्मेलन में अपने अध्यक्षीय भाषण में, जिसे बाद में एक आलोचनात्मक निबंध के रूप में प्रकाशित किया गया, "मित्रों, गैरजिम्मेदार लेखकों का दिन खत्म हो गया है", दलित साहित्य के सौंदर्यशास्त्र पर अपने विचार व्यक्त किए, क्योंकि दलित साहित्य के केंद्र में मनुष्य है। उन्होंने भारतीय मुख्यधारा के लेखकों की रोमांटिक प्रकृति की आलोचना की, जो "कला के लिए कला" के समर्थक थे, जिससे लोगों और लेखन के बीच एक बड़ी खाई पैदा हो गई। उनके शब्दों में:

सुंदरता ही एकमात्र लक्ष्य बन गई; रूप और शैली सर्वोपरि हो गई, और विषय-वस्तु को हवा में उड़ा दिया गया। यह धारणा विकसित हुई कि लेखक अपने लिए लिखता है। परिणामस्वरूप, साहित्यिक दुनिया में लेखकों और कवियों के छोटे-छोटे, परस्पर प्रशंसा समूह विकसित हुए, जिन्होंने अपने लिए लिखा। इन समूहों से जो लेखन निकला, वह पलायनवाद, सेक्स और अनैतिकता के विषय और जीवन की निरर्थकता की भावना से युक्त था। (डैंगल 329)

उनके अनुसार सौन्दर्य एक सापेक्ष अवधारणा है, न कि स्थिर या शाश्वत। सौन्दर्य एक अवधारणा के रूप में संबंधित युगों में प्रचलित विचारों से संबंधित है। एक समय था जब साहित्य का विषय राजा हुआ करते थे, न कि आम लोग, लेकिन आज झुग्गी-झोपड़ियों और अछूत बस्तियों का जीवन साहित्य का विषय बन गया है। साहित्य और मिथकों के बीच एक घनिष्ठ संबंध है और दलित लेखक अपने स्वयं के मिथकों और अपने स्वयं के नायकों या वीरांगनाओं की कहानियों के बारे में लिखने की कोशिश कर रहे हैं ताकि दलित पहचान से जुड़ी एक कथा परंपरा विकसित हो सके (वही 329)।

दर्शन की एक शाखा के रूप में सौंदर्यशास्त्र, कला, सौंदर्य और स्वाद की प्रकृति, सौंदर्य के निर्माण और प्रशंसा से संबंधित है। वैज्ञानिक रूप से, इसे संवेदी या संवेदी-भावनात्मक मूल्यों के अध्ययन के रूप में परिभाषित किया जाता है और इसे भावनाओं और स्वाद के निर्णय भी कहा जाता है। कंसाइज ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी ऑफ करेंट इंग्लिश (1992) सौंदर्यशास्त्र को "अच्छे स्वाद और सौंदर्य की प्रशंसा के सिद्धांतों का एक समूह" (19) के रूप में परिभाषित करता है।

लियो टॉलस्टॉय ने अपनी पुस्तक 'आर्ट क्या है' (1898) में कला को मूल्य निर्णय के दृष्टिकोण से परिभाषित किया है। उन्होंने कहा:

कला एक मानवीय क्रियाकलाप है, जिसमें व्यक्ति सचेत रूप से, कुछ बाह्य संकेतों के माध्यम से, उन भावनाओं को दूसरों तक पहुंचाता है, जिन्हें वह जी चुका है, और अन्य लोग भी इन भावनाओं से प्रभावित होते हैं तथा उन्हें अनुभव भी करते हैं (गोस्वामी 222 में उद्धृत)।

कला के मूल्य के बारे में उनकी अवधारणा सहानुभूति के मूल्य पर आधारित है जो अच्छी भावनाओं के लिए साझा की जाती है। नोएल कैरोल ने अपनी पुस्तक बियॉन्ड एस्थेटिक्स: फिलोसोफिकल एसेज (2001) में लिखा है कि कला वस्तु ऐसी चीज है जिसे एक निश्चित प्रकार की प्रतिक्रिया और एक निश्चित प्रकार के संबंध को भड़काने के लिए डिज़ाइन किया गया है। कला (वस्तु) के साथ विहित संबंधों में सौंदर्यशास्त्र शामिल है, हालांकि इसे चित्रित किया जाना है। इसलिए, उनके लिए, "कलाकृति एक ऐसी वस्तु है जिसे सौंदर्य संबंधी अनुभव, धारणा, दृष्टिकोण और इसी तरह की अन्य चीजों को उत्पन्न करने के कार्य के साथ डिज़ाइन किया गया है" (कैरोल 5)। उन्होंने देखा कि कांट और हचिसन ने कला के सिद्धांत के बारे में बहुत कुछ कहा है, लेकिन वास्तव में वे कला के सिद्धांत नहीं हैं बल्कि वे सुंदरता के सिद्धांत हैं। वे लिखते हैं:

हालांकि कांट और हचसन कला के बारे में बहुत कुछ कहते हैं, लेकिन उनके सिद्धांत कला के सिद्धांत नहीं हैं। वे सौंदर्य के सिद्धांत हैं - और कांट के मामले में उदात्त के भी। लेकिन वे कला की परिभाषाओं जैसा कुछ भी प्रस्तावित नहीं करते हैं। (इबिड 31) दूसरी ओर, गाइल्स डेल्यूज़ का तर्क है कि कला अवधारणाओं को उत्पन्न नहीं करती है, यद्यपि यह समस्याओं और उत्तेजनाओं को संबोधित करती है, बल्कि यह समस्याओं को संबोधित करने के अपने तरीके के रूप में संवेदनाओं, प्रभावों, तीव्रताओं को उत्पन्न करती है (ग्रेज़ देखें)।

17वीं सदी के अंत से लेकर 20वीं सदी की शुरुआत तक पश्चिमी सौंदर्यशास्त्र में धीरे-धीरे क्रांति आई जिसे अक्सर आधुनिकतावाद कहा जाता है। जर्मन और ब्रिटिश विचारकों ने कला और सौंदर्य अनुभव के मुख्य घटक के रूप में सौंदर्य पर जोर दिया और कला को अनिवार्य रूप से पूर्ण सौंदर्य के लक्ष्य के रूप में देखा।

कांट के लिए सुंदरता एक निस्वार्थ अभिव्यक्ति है, अपने आप में एक सत्य है और यह हमारे निर्णय के कारण ऐसा है। इसके अलावा, सुंदरता "सार्वभौमिक" और "आवश्यक" है, जिसका अर्थ है कि सभी स्थानिक-कालिक आकस्मिकताओं में सौंदर्य का उद्देश्य और अलगाव मान्य है। कांट की योजना में, सुंदरता केवल प्रतीत होता है या भावनात्मक रूप से उद्देश्यपूर्ण है, लेकिन वास्तव में इसका कोई उद्देश्य नहीं है ('उद्देश्य के बिना उद्देश्यपूर्णता' या 'अंत के बिना अंतिम')। कांट के लिए, 'सौंदर्य के निर्णय तब कलंकित होंगे जब हम वस्तु में हमारे व्यावहारिक हितों द्वारा निर्देशित होंगे - यदि हम वस्तु को अस्तित्व में मानते हैं तो हम जिस हित को बनाए रख सकते हैं, वह हित हम संभवतः बनाए रख सकते हैं' (कैरोल 30)।

पीटर लैमार्क ने निबंध "सौंदर्यशास्त्र और साहित्य: एक

समस्याग्रस्त संबंध?" (2007) में बताया है कि कैसे फ्रैंक सिबली का सौंदर्य संबंधी अवधारणा पर दृष्टिकोण कांट से अलग है। सिबली के लिए, सौंदर्यशास्त्र केवल सौंदर्य तक ही सीमित नहीं है जैसा कि कांट ने दावा किया है बल्कि यह उससे कहीं अधिक व्यापक है। वह वर्णनात्मक और मूल्यांकनात्मक तत्वों को भी पहचानता है जो सौंदर्य संबंधी अवधारणाओं में परस्पर क्रिया कर सकते हैं। वह कहता है कि सौंदर्य संबंधी गुण उभरते हैं जिनके मूल्यांकन के लिए केवल संवेदी धारणा से अधिक कुछ की आवश्यकता होती है, क्योंकि साहित्य के मामले में, भाषा किसी कार्य की सौंदर्य की दृष्टि से सराहना करने के लिए पर्याप्त मानदंड नहीं है। भाषाई क्षमता से परे कुछ अन्य कौशल भी शामिल हैं और इस संबंध में साहित्यिक प्रशंसा स्वाभाविक नहीं बल्कि विवेक का एक प्रशिक्षित तरीका है। वह यह भी मानते हैं कि किसी वस्तु के सौंदर्य और गैर-सौंदर्य संबंधी गुणों के बीच कोई तार्किक या प्रेरक संबंध नहीं है वह साहित्यिक कृतियों की सराहना में सौंदर्यशास्त्र की 'सामान्यीकरणीय' अवधारणा के बजाय 'सौंदर्यशास्त्रीय विशिष्टतावाद' की प्रयोज्यता के बारे में इस आधार पर बताते हैं कि विभिन्न कृतियों में समान काव्यात्मक या साहित्यिक उपकरण कभी भी सौंदर्य प्रभाव की एकरूपता सुनिश्चित नहीं करते हैं (लैमार्क 30-31)।

एस्थेटिक थ्योरी (2002) में, थियोडोर एडोर्नो न केवल कला में सौंदर्य और उदात्तता के कार्य जैसे मानक सौंदर्य संबंधी व्यस्तताओं से चिंतित हैं, बल्कि कला और समाज के बीच संबंधों से भी चिंतित हैं। उन्हें लगता है कि पंथ और साम्राज्यवादी कार्यों जैसे प्रतिबंधों से आधुनिक कला की स्वतंत्रता, जिसने कला के पिछले युगों को त्रस्त कर दिया था, ने कला की विस्तारित आलोचनात्मक क्षमता और बढ़ी हुई औपचारिक स्वायत्तता को जन्म दिया है। इस विस्तारित स्वायत्तता के साथ कला की सामाजिक टिप्पणी के लिए बढ़ी हुई जिम्मेदारी आती है। हालांकि, एडोर्नो को नहीं लगता कि अत्यधिक राजनीतिक सामग्री कला की सबसे बड़ी आलोचनात्मक ताकत है; बल्कि वह "सत्य-सामग्री" (वाहरहेइट्सगेहल्ट) के अधिक अमूर्त प्रकार का समर्थन करते हैं। कांटियन या आदर्शवादी सौंदर्यशास्त्र के विपरीत, एडोर्नो का सौंदर्यशास्त्र विषय की धारणा के बजाय कला वस्तु के भीतर सत्य-सामग्री का पता लगाता है। हालांकि, ऐसी सामग्री समाज से अपनी आवश्यक दूरी के कारण कला की आत्म-चेतना से प्रभावित होती है, जो आधुनिक कला में निहित असंगतियों जैसे उदाहरणों में बोधगम्य है। सत्य-सामग्री अंततः उन अनेक द्वंद्वत्मक अंतःक्रियाओं के बीच के संबंध में पाई जाती है जो विषय और अधिक सामाजिक परंपरा के सापेक्ष कलाकृति की स्थिति(ओं) से उभरती हैं, साथ ही काम के भीतर आंतरिक द्वंद्वत्मकता भी। पूरी किताब में, एडोर्नो नाटककार सैमुअल बेकेट की प्रशंसा करते हैं, जिन्हें यह पुस्तक समर्पित की गई थी।

एडोर्नो के सौंदर्य सिद्धांत से गुजरते हुए, जुडरवार्ट पाठक को ऐतिहासिक संदर्भ, वैचारिक ढांचे और एडोर्नो के सौंदर्यशास्त्र के सामाजिक और राजनीतिक दावों से परिचित कराते हैं। कला के बारे में एडोर्नो की अवधारणा की प्रकृति भी विरोधाभासी है। उनका कहना है कि कला का वांछनीय सामाजिक महत्व तभी संभव है जब वह समाज से अर्ध-स्वायत्त हो (देखें मिशेल 202)

थियोडोर एडोर्नो का मानना था कि कला और सौंदर्य अनुभव के वस्तुकरण में संस्कृति उद्योग की भूमिका का सामना किए बिना सौंदर्यशास्त्र आगे नहीं बढ़ सकता।

सौंदर्यशास्त्र की पश्चिमी अवधारणा के विपरीत, भारतीय सौंदर्यशास्त्र आध्यात्मिकता पर आधारित है और मुख्यधारा की ब्राह्मणवादी संस्कृति द्वारा प्रचारित किया जाता है। भारतीय

संस्कृति अनिवार्य रूप से अपनी आध्यात्मिकता में निहित है जो शरीर की तुलना में आत्मा पर अधिक जोर देती है। यह पाया जाता है कि उपनिषदों के युग से लेकर दार्शनिक बहस के युग तक, आनंद चाहने वाले भारतीय मन की चेतना पारलौकिक सुख की खोज में लगी रही है। स्वर्गीय आध्यात्मिक सुख की खोज के लिए, भारतीय दर्शन ने, अनादि काल से, सर्वोच्च सत्ता की प्राप्ति के लिए भौतिक से अभौतिक, सांसारिक से आध्यात्मिक में परिवर्तन के लिए काम किया है। रस की प्राप्ति से प्राप्त आनंद शाश्वत सत्ता के साथ एकीकृत सर्वोच्च सत्ता की परम भावनाओं से निकलता है। इस प्रकार, रस सिद्धांत दिन-प्रतिदिन के जीवन के सामान्य संबंधों की तुलना में अधिक आध्यात्मिक है।

भारतीय मुख्यधारा की साहित्यिक आलोचना रस (रस/स्वाद/परम आनंद/मानसिक भावना/सौंदर्यपूर्ण आनंद) को सभी साहित्य की आत्मा मानती है। ऋषि भरत ने नाट्यशास्त्र (लगभग 200 ई.) नामक अपने ग्रंथ में रस प्राप्ति के विस्तृत सिद्धांत को प्रतिपादित किया है, और उन्होंने आठ प्रकार के रसों को सूचीबद्ध किया है: कामुक, हास्य, दयनीय, वीर, भयावह, उग्र, और घिनौना और अद्भुत। जीएन देवी ने भारतीय साहित्यिक आलोचना में देखा; रसों की संख्या शुरू से ही विवाद का विषय रही है। बाद में, आलोचकों ने एक नौवां रस, शांत जोड़ा। भारतीय सौंदर्यशास्त्री अक्सर रस के सिद्धांत को आध्यात्मिकता से जोड़ते हैं, और अद्वैत वेदांत के अद्वैतवाद के दर्शन में प्रेरणा पाते हुए, उन्होंने "सभी रसों को एक रस में संश्लेषित करने" की कोशिश की है (थम्पी 318)।

निष्कर्ष

दलित साहित्यिक प्रस्तुतियों ने मुख्यधारा के प्रामाणिक साहित्य और भारतीय पहचान के जातिवादी निर्माणों को चुनौती दी है (लिम्बाले 2004, 1)। यह उत्तर-औपनिवेशिक साहित्य की साफ-सुथरी द्विआधारी व्यवस्थाओं पर भी सवाल उठाता है। जैसा कि गायत्री चक्रवर्ती स्पिवक ने उल्लेख किया है, दलित उप-वर्ग उपनिवेशवादी और उपनिवेशित की द्वंद्वत्मकता के भीतर नहीं, बल्कि जाति आधारित सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक संरचनाओं में स्थित है।

संदर्भ

1. हंट स. हिंदी दलित साहित्य और प्रतिनिधित्व की राजनीति; 2014. DOI: 10.4324/9781315733944।
2. वेसलर ह. हाशिए पर जाने से लेकर पहचान की पुनर्खोज तक: हिंदी साहित्य में दलित और आदिवासी आवाज़ें. *Studia Neophilologica*. 2020;92:1-16. DOI: 10.1080/00393274.2020.1751703।
3. परवीन श, आलम एमडी. हिंदी में दलित लेखन और प्रतिरोध की राजनीति और भीतर से मान्यता: कौशल्या बैसंत्री द्वारा चयनित आख्यान का विषयगत वाचन. *Contemporary Voice of Dalit*; 2023. DOI: 10.1177/2455328X231171021।
4. ब्रोवास्की म. हम दलित इतिहास हैं: हिंदी दलित आत्मकथाएँ और भारत के अतीत और वर्तमान के साथ उनका जुड़ाव. *Cracow Indological Studies*; 2021, 23. DOI: 10.12797/CIS.23.2021.02.01।
5. मिश्रा श, जोशी प, गार्डनर क. हाशिए पर पड़ी आवाज़ों और समकालीन साहित्यिक प्रवृत्तियों के बीच के अंतरसंबंध की खोज. *Shodhkosh: Journal of Visual and Performing Arts*; 2024, 5.

6. इंगोले प. दलित और सांस्कृतिक अध्ययनों का अंतर्संबंध: अनुशासनात्मक स्थान का ब्राह्मणीकरण. *CASTE: A Global Journal on Social Exclusion*. 2020;1:91-106. DOI: 10.26812/caste.v1i2.177।
7. थियारा न. सबाल्टर्न एक्सपेरीमेंटल राइटिंग: दलित लिटरेचर इन डायलॉग विद द वर्ल्ड. *Ariel: A Review of International English Literature*. 2016;47:253-280. DOI: 10.1353/ari.2016.0003।
8. बसु त. संयुक्त प्रांत में हिंदी दलित साहित्य: स्वामी अछूतानंद और चंद्रिका प्रसाद जिज्ञासु, 1900-1930; 2023. DOI: 10.5040/9789389867060।
9. सिंह प, कपूर म. दलित साहित्य को समझना: दलित सौंदर्यशास्त्र के प्रति एक आलोचनात्मक दृष्टिकोण. *Rupkatha Journal on Interdisciplinary Studies in Humanities*; 2021, 13. DOI: 10.21659/rupkatha.v13n4.06।
10. चौधरी र. हाशिए पर पड़े समूहों का स्व-प्रतिनिधित्व: WEB डु बोइस के माध्यम से सोचने का एक नया तरीका. *Business Ethics Quarterly*; 2021, 31. DOI: 10.1017/beq.2021.5।
11. रिंगस्टैड र, लेवा व, गार्सिया ज, जसेक-रिस्डहल क. हाशिए पर पड़ी आवाज़ों के लिए जगह बनाना: सामुदायिक परिवर्तन और सामाजिक न्याय पर सेवा सीखने को फिर से केंद्रित करना. *Journal of Teaching in Social Work*. 2012;32:268-283. DOI: 10.1080/08841233.2012.688096।
12. हाजिसोटेरियो क, करौसियो क, एंजेलिडेस प. हाशिए पर रहने और समावेशन पर बच्चों की आवाज़ें: साइप्रस में दो दशकों के शोध से सीखे जाने वाले सबक. *International Journal of Inclusive Education*. 2021;28:1-25. DOI: 10.1080/13603116.2021.2008534।
13. प्रैट ब. वैश्विक स्वास्थ्य अनुसंधान प्राथमिकता-निर्धारण में हाशिए पर पड़े समूहों और समुदायों को शामिल करना. *Journal of Empirical Research on Human Research Ethics*. 2019;14:169-181. DOI: 10.1177/1556264619833858।
14. मोंटेग क, एकरमैन म, सेंट्यो च. "पीछे बैठे लोगों के लिए जोरदार आवाज़": गुणात्मक शोध के माध्यम से ऐतिहासिक रूप से हाशिए पर पड़ी आवाज़ों को बढ़ावा देना. *ALISE Annual Conference Proceedings*; c2022. DOI: 10.21900/j.alise.2022.1014।
15. खान त, मोहसिन अ, स्वालेहिन म, भट ज. संघर्ष क्षेत्रों में हाशिए पर पड़े बच्चों की आवाज़ें: कश्मीरी बच्चों की कहानियों पर आधारित एक अध्ययन; c2023. DOI: 10.1007/978-3-030-68127-2_250-1।

Creative Commons (CC) License

This article is an open access article distributed under the terms and conditions of the Creative Commons Attribution (CC BY 4.0) license. This license permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original author and source are credited.